International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 15-09-2025, Accepted: 15-10-2025, Published: 30-10-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 58-60

आर्द्रा: आधुनिक जीवन में एक माँ की पीड़ा

डॉ. रोहित कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल केंद्रीय विश्वविद्यालय, उत्तराखंड, भारत

सारांश
नई कहानी के कथाकारों ने अपरिचित आधुनिक परिवेश में प्रवेश कर रहे व्यक्ति को उसके नवीन संबंधों और मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है | अतीत में गहरे धंसे किसी भी जीवन मूल्य तथा संबंध से व्यक्ति न तो पूरी तरह मुक्त हुआ है और न ही वह उन समस्याओं का कोई हल दे सका है जो आधुनिक समाज ने उत्पन्न किए हैं | समाज जब अपनी एक अवस्था को पूरा कर दूसरी अवस्था में प्रवेश करता है तो मानवीय संबंधों और सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन या विघटन देखने को मिलता है | ऐसी स्थिति में व्यक्ति ही नहीं बल्कि उसके साथ–साथ पूरा समाज ही भीतरी छटपटाहट को सह रहा होता है | यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तन के दौर में नई कहानी प्रदत्त सत्यों के नकार से उत्पन्न अनुभवजनित 'प्रमाणिकता की खोज'[1] कही गयी | हम मोहन राकेश की कहानी 'आर्द्रा' के माध्यम से आधुनिक जीवन में एक माँ की पीड़ा को समझने की कोशिश करेंगे |

मूल शब्दः नई कहानी, मोहन राकेश, आधुनिक परिवेश, माँ

अपने जीवन के अनुभव से निर्मित विश्वसनीयता से नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर मोहन राकेश ने शहरी जीवन के प्रमाणिक चित्र प्रस्तुत किए हैं | उनकी कहानियाँ किसी प्रदत्त दिशा की ओर नहीं बढ़ती अपितु स्वयं ही एक स्थिति या अनुभूति की छाया बनने लगतीं हैं इसलिए वे किसी क्लाईमैक्स तक नहीं जातीं बल्कि अपने इर्द–गिर्द ही अर्थ को उकेर कर दिशाहीनता को स्वीकृत कर देतीं हैं | ऐसी ही एक कहानी है – 'आर्द्रा', जो आधुनिक माँ की उस पीड़ा को प्रस्तुत करती है जिससे उसके होने का अर्थ जुड़ा हुआ है | यहाँ शहरीकरण के दबाव में माँ और उसके दो बेटों के आपसी संबंध और सन्दर्भ तो बदल ही गए हैं साथ ही साथ अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ भी बदल चुकी हैं | जिसके कारण माँ एक घर में अकेलेपन के बावजूद बेटे की देख–भाल से स्वयं के होने को अनुभव कर पाती है तो दूसरे घर में सुख–सुविधाओं के मध्य मेहमान हो जाने के अनुभव से खुद को बचा नहीं पाती है | इस तरह कहानी में "आर्थिक दृष्टि से संपन्न और विपन्न बेटों के प्रति सम–भाव से बंटे मातृत्व की प्रभावी अभिव्यक्ति हुई है"[2] |

'आर्द्रा' एक नक्षत्र है जो भारतीय माँ का संकेत बन कर कहानी में मौजूद है | यह नक्षत्र आषाढ़ मास में दिखाई देता है और जो जीवन तथा मूलतः खेती–वनस्पति को प्राण वर्षा देता है | कहानी में उपस्थित बचन, माँ के रूप में आर्द्रा नक्षत्र की ही भांति अपना प्रेम दोनों बेटों के जीवन में बरसा रही है | किन्तु लेखक का लक्ष्य केवल मातृ प्रेम की प्रस्तुति ही नहीं है बल्कि अभाव में रह रहे बेटे के प्रति माँ की ममता का झुकाव है | कहानी स्पष्ट रूप से दो परिवेश का वर्णन करती है, पहला परिवेश छोटे बेटे के घर का है जहाँ बेरोजगारी के कारण संसाधनों का अभाव है | कहानी का आरंभ ही छोटे लड़के की वजह से परदेस में पड़े रहने की ऊब और झुंझलाहट से होता है "जहाँ न कोई उसकी जबान समझता था, न वह किसी की जबान समझती थी"[3] | कोंकणी जानने वाली पड़ोसिन इरावती से वह बात न कर पाने के कारण अपने में ही कैद रहती थी | ऊपर से बचन को बिना बताये कई–कई दिन तक बिन्नी गायब रहता है | इससे उसके जीवन में बस अकेलापन और प्रतीक्षा ही थी | वह सोचती भी है– "इस लड़के को रत्ती चिंता नहीं थी कि माँ किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से इसका इन्तजार करती है | मन में आया, तो घर आ गए, नहीं तो जहाँ हुआ पड़ रहे"[4] | बचन इन समस्याओं को लम्बे समय से झेल रही है और सीमित संसाधनों में भी रह रही है | इसका कारण यह है कि इतनी समस्याओं के बावजूद बचन एक माँ के रूप में अपने होने को बिन्नी के पास ही अनुभव कर पाती है– "बिन्नी इतना बड़ा होकर भी जब–तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था | कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उसके घुटनों से गाल सहलाने लगता | ऐसे क्षणों में उसका दिल पिघल जाता और वह उसके बालों पर हाथ फेरती हुई छाती से लगा लेती"[5] | यह आत्मीय पल ही बचन को इस अकेलेपन से भरे परदेस में रहने के लिए रोके हुए हैं | माँ–बेटे की आत्मीयता सभी अभावों को भर देती है | किन्तु यही आत्मीयता दोनों भाइयों के बीच नहीं है |

जब बड़े भाई लाली की चिट्ठी आती है तो बिन्नी अपनी माँ को बड़े अनमने भाव से चिट्ठी पढ़ कर सुनाता है | ऐसा पहली बार नहीं हुआ है बल्कि हर बार होता है और बचन जानती है कि बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नहीं मिलता है– "वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढ़ कर सुनाता था जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी गैर आदमी के नाम आई किसी नावाकिफ आदमी की चिट्ठी हो"[6] | भाई के प्रति इस रूखेपन की वजह बड़े भाई के आगे बढ़ जाने की टीस है और अपने 'कपूत' हो जाने की मजबूरी भी | किन्तु बिन्नी लाली पर निर्भर नहीं होना चाहतो | बल्कि वह बेकारी में ही अपनी गुज़र–बसर कर रहा है और दूर आकर बस गया है | बचन जानती है कि वह 'ट्यूशन–ऊशन' करके ही कुछ कमा लेता है, वरना सही माने में वह बेकार ही है | बिन्नी के प्रति बचन के शब्दों में लेखक मोहन राकेश स्पष्ट कर देते हैं– "उसके दिल में बड़े–बड़े मनसूबे जरूर थे और उनका बखान करते वक्त वह छोटा–मोटा भाषण दे डालता था | मगर उन मनसूबों को पूरा करने के लिए जिस दुनिया की जरूरत थी, वह दुनिया अभी बनी नहीं थी"[7] | नई कहानी के दौर में सपने और वास्तविकता में बहुत चौड़ी खाई थी | अभी–अभी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के महानगर नए सपनों को देखने वाली आँखों को आकर्षित तो कर रहे थे लेकिन समाज उसके लिए तैयार नहीं था | यह गहरा अंतर्विरोध एक ओर समझौता करने वाले के लिए अवसर था तो दूसरी ओर भीड़ में शामिल न हो सकने वाले युवा पीढ़ी के सपनों को आसपास बसे कस्बे में लगातार ठेल भी रहा था | बिन्नी उन्हीं में से एक अवश्य हो सकता है | जब बिन्नी और शशि बचन को स्टेशन पर बैठाने जाते हैं तो भी वह करघे के कामगार और मालिकों की बहस में व्यस्त रहते हैं और बचन

सोचती है–"ये लोग कभी अपने काम के बारे में बात क्यों नहीं करते ? अपनी बेकारी की चिंता इन्हें क्यों नहीं सताती?[8] | नयी जागरूक पीढ़ी इसी तरह दूसरों के प्रति चिंतित रहती है लेकिन वह स्वयं अपने लिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं यह आधुनिक जीवन की विडंबना ही है | मोहन राकेश नई कहानी के दौर में इस पीढ़ी को न केवल देख रहे थे बल्कि वे उसका हिस्सा भी थे इसलिए कहानी में बिन्नी का चरित्र बहुत वास्तविक और जीवंत नज़र आता है |

इस बेरोजगारी का असर भोजन की थाली पर भी पड़ता है | लेखक ने अभाव से भरे जीवन को खुद जिया था इसलिए बहुत ही बारीकी के साथ वह बचन के माध्यम से एक माँ के भाव को कह देते हैं– "मगर अक्सर उसकी दाल की पतीली खाली हो जाती, और यह देखकर कि उन लोगों की भूख अभी बनी है, उसे घर की गरीबी अपना अपराध प्रतीत होती"[9] | एक माँ के सामने उसके बच्चे भूखे रहें यह उसके लिए बहुत गहरा अनुभव है | बिन्नी की स्थिति के प्रति माँ के रूप में बचन इसी कारण चिंतित दिखाई देती है | उसके भविष्य के प्रति आशंकित भी है | भविष्य में छुपी बैठी कोई भी आवश्यकता बिन्नी के लिए एक चुनौती ही है | जब बड़े भाई लाली का पत्र आता है और उसके बीमार होने की बात बचन को पता चलती है तो वह जल्द से जल्द लाली के पास पहुंचना चाहती है | किन्तु उसे यह डर भी सताता है कि बिन्नी के पास किराए लायक पैसे होंगे ही नहीं | महीने के अंत तक आते–आते अकसर बिन्नी के पास पैसे नहीं रहते थे | लेकिन उधार मांग कर बिन्नी रेल का टिकट ले आता है और अपने दोस्त शशि के सामने उधार की चर्चा भी करने लगता है जिससे बचन उधार का कारण स्वयं को मानकर बुरा अनुभव करती है – "बचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात क्यों कर रहा है | क्या वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपए उधार लेने पड़े होंगे ? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उस पर उधार चढ़े ? वह उससे कह देता, तो वह बारह–चौदह दिन बाद चली जाती"[10] | नवीन आर्थिक परिस्थितियों का सामना करने वाले किसी नए पीढ़ी के व्यक्ति के तरह ही आधुनिक जीवन में एक माँ की यही पीड़ा है कि वह न चाहते हुए भी अपराधी है| उसकी गवाही परिस्थितियों के बीच घुटती रहती है और मौन रह कर ही वह अपनी भूमिका सहेजे रखती है | मोहन राकेश एक सफल कहानीकार के रूप में जानते हैं कि "अनुभूति और परिवेश दोनों को किस सार्थक चुने हुए बिम्बों, घटनाओं और स्थितियों द्वारा जीवित मुहावरे में अनुवादित–संप्रेषित कर दिया जाये कि पाठक की चेतना का ही अंश बन सके"[11]| यही कारण है कि गरीबी और भूख के अनुभव को पाठक के सूक्ष्म और गहनतम तल तक उतार देने के सशक्त संकेत कहानी में बार–बार लौटते हैं |

कहानी में दूसरा परिवेश लाली का घर है | जहाँ सुख–सुविधाएँ हैं, नौकर–चाकर हैं किन्तु इस व्यवस्था को निर्मित करने में लाली बड़ा हो चुका है और इतना बड़ा कि अब बचन से भावनात्मक स्तर पर दूर जा चुका है–"लाली से सवाल पूछने में उसका स्वर थोड़ा दब जाता था | वह बेटा बड़ा होते–होते इतना बड़ा हो गया था कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी"[12]| यही अंतर बचन को बिन्नी की ओर ले जाने का प्रमुख कारण है | एक माँ के रूप में बचन अनुभव करती है कि उसकी किस बेटे को अधिक आवश्यकता है ? दूसरी ओर आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या है समय का अभाव | माँ से बात कर पाने का समय लाली के पास नहीं था | इस भावनात्मक दूरी को न केवल बचन माँ–बेटे के संबंध में देखती है बल्कि उसे बहु कुसुम और बेटे लाली के मध्य भी यह भावशून्यता दिखाई देती है | संबंध किस तरह नई परिस्थितियों में अपनी आत्मीयता और गर्माहट खो देते हैं उसे बचन कुसुम के व्यवहार में अनुभव भी करती है | बचन के मेहमान हो जाने की स्थिति एक गहरी विवशता है –"कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है"[13]| दिन भर कोई काम न होने से बचन के सामने दिन किसी पहाड़–सा था और उसके बाद फिर वैसी ही रात | नींद न आना अब रोज की बात हो गयी थी और बचन अपने अनावश्यक हो जाने के छोर तक आ खड़ी होती है –"बचन सोचती कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देखभाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है ?"[14] धीरे–धीरे शहरीकरण के कारण आधुनिक जीवन में बुजुर्ग माँ–बाप या पिछली पीढ़ी अपने होने की आवश्यकता को खोते चले जा रहे हैं | माता–पिता के प्रति नयी पीढ़ी का स्वर बदलता ही गया है और शहरीकरण के परिवेश में यह संवेदना नई कहानी से समकालीन कहानी तक गहरी होती चली चली गयी है | मनु भंडारी की 'अकेली', अमरकांत की 'दोपहर का भोजन', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', उषा प्रियंवदा की 'वापसी' आदि इसके अच्छे उदहारण हैं |

बाहरी परिवेश जितना सुख–सुविधा संपन्न है इसके विपरीत बचन अपने भीतर उतनी ही अशांति और अस्थिरता अनुभव करती है | यही कारण है कि पूरी सुविधा और समय होने के बावजूद वह भजन में अपना मन नहीं लगा पाती और अंततः बचन बिन्नी के पास जाने का फैसला करती है | जहाँ उसका कोई अर्थ हो, आवश्यकता हो, उसकी कोई भूमिका हो | लाली भी माँ की स्थिति को समझता है और उकताहट–सी स्थिति में माँ के जाने की बात को स्वीकार कर लेता है | यह उकताहट जितनी माँ से जुड़ी है उतनी ही भाई के प्रति माँ की बातों से भी जुड़ी है | कहानी जीवन में बढ़ रही जटिलताएं दर्शाती चलती है और भाव–संबंध खुलते चले जाते हैं | लेखक ने कहानी कहने के लिए मुख्य चरित्र को ही अपना आधार बनाया है | इससे लेखक को केंद्र में रह कर सभी दिशाओं में बढ़ने का अवसर मिल जाता है और इस तरह अर्थ उस यथार्थ से ही निर्मित होने लगता है जिसे लेखक ने कहानी के लिए चुना है |

कहानी के आरंभ में बचन जिस परिवेश से डरती है कहानी का अंत उसे उसी ओर ले जा रहा है जहाँ अभावों के बावजूद एक माँ अपने होने को अनुभव कर पाती है –"वह जहाँ जा रही थी, उस घर का नक्शा धीरे–धीरे उसकी आँखों के सामने उभरने लगा | नीची छत वाला टूटा–फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हूँफ–हूँफ् और कुएँ की तरफ से आती मोटी, भद्दी, फटी–से आवाज़–ओ डेडाई है डिवजों फेंजल... अँधेरा, एकांत, बिन्नी, शशि और उसके दोस्त, बहसें और दाल–रोटी के लिए उन लोगों की छीना–झपटी..."[15]| यह बचन की माँ के रूप में वापसी है, वह वापसी जो साहस और त्याग से सराबोर है | लेकिन यदि कथानक की दृष्टि से देखें तो "सिर्फ माँ की 'भावना' कारण रूप में प्रतिष्ठित है[16] और जो पूरी कहानी में व्याप्त होकर बचन के निर्णय के लिए विरोधी परिस्थितियों की योजना में निर्मित होती है | इस तरह "कहानी न 'मैं' की व्यक्तिगत डायरी है और न परिस्थिति की निर्वैयक्तिक रिपोर्टिंग"[17] बल्कि वह तो व्यक्ति और परिवेश का सार्थक संबंध–क्षण है जिसे स्पन्दनशील और प्रमाणिक सिचुएशंस के रूप में प्रस्तुत होना है | कथा आलोचक सुरेन्द्र चौधरी लिखते हैं – "वचन का बिन्नी के प्रति सहज रूप से संवेदनशील होना निरर्थक नहीं है, इसे हम भावना के धरातल पर ही समझ सकते हैं | कहानी की परावधि तक पहुँच कर हम इस मानवीय अर्थ के प्रति–मानवीय भावना के उत्थापन के प्रति–सजग हो जाते हैं | इसी अंश में वचन की वत्सलता का क्रियात्मक रूप खुलता है[18]|

निष्कर्षतः आधुनिक परिवेश में संबंधों से टूटा हुआ व्यक्ति अधिक–से–अधिक अकेला और अजनबी बनता जाता है लेकिन पिछली पीढ़ी की बचन स्वयं को अपनी अर्थवत्ता से जोड़ पाती है

और उस ओर नहीं जाती जहाँ केवल शून्यता और उदासीनता है| लेखक मोहन राकेश की "पैनी दृष्टि अपने आस–पास की हर घटना में कहानी ढूँढ लेने की क्षमता रखती है"[19]| यही कारण है कि आर्द्रा कहानी उनकी सशक्त कहानियों में गिनी जाती है | उन्होंने कहानी में जो चित्र प्रस्तुत किए हैं वे अंत तक आते–आते सघन और संकेतात्मक रूप धारण कर लेते हैं जैसे कहानी के आरंभ और अंत में मादा सूअर और उसके बच्चे, तो दूसरी ओर नक्षत्र का संकेत और कहानी का नामकरण | राजेन्द्र यादव लिखते हैं और ठीक ही लिखते हैं कि "कहानी मूलतः चित्रों की ही भाषा है – एक आदिम भाषा | ..... चित्र चाहे कितनी ही सूक्ष्म–संवेदनाओं के क्यों न हो, कहानी के माध्यम से हम उन्हें 'देख' सकते हैं"[20]| अतः कह सकते हैं कि 'आर्द्रा' कहानी एक माँ की सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण ही ठहरती है और इन चित्रों को उकेरने के लिए ही प्रमाणिक रूप से लेखक ने द्रष्टा और भविष्यवेत्ता के आवरण हटा कर प्रत्यक्ष मानवीय संबंधों के बीच उभरते संकट का सामना किया है |

संदर्भ

1. राजेंद्र यादव, कथा यात्रा, राधाकृष्ण प्रकाशन (2000) नई दिल्ली, पृष्ठ–21
2. गोपाल राय, हिंदी कहानी का इतिहास 1951–1975, राजकमल प्रकाशन (2019) नई दिल्ली, पृष्ठ–71
3. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–62
4. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–62
5. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–63–64
6. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–63
7. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–64
8. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–70
9. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–65
10. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–68–69
11. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, राधाकृष्ण प्रकाशन, (2010) नयी दिल्ली, पृष्ठ–48
12. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–71
13. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–71
14. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–72
15. जयदेव तनेजा (संपा), मोहन राकेश: दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन (2009) नयी दिल्ली, पृष्ठ–77
16. सुरेन्द्र चौधरी, हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन (2010) पृष्ठ–84
17. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, राधाकृष्ण प्रकाशन, (2010) नयी दिल्ली, पृष्ठ–29
18. सुरेन्द्र चौधरी, हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन (2010) नई दिल्ली पृष्ठ–131
19. नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी, लोकभारती प्रकाशन (2005) नई दिल्ली, पृष्ठ–27
20. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानांतर, राधाकृष्ण प्रकाशन, (2010) नयी दिल्ली, पृष्ठ–68